जाता है। नालियों के अंदर की उत्तरी ढलान पर 50–50 सेमी की दूरी के अंतराल पर 3–4 बीजों की बुवाई करें। अंकुरण पश्चात् जब पौधों में 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आ जाती हैं अथवा 18–21 दिनों के होते हैं तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक या दो स्वस्थ पौधे रखकर शेष को निकाल देवें। जब पौधे 30–35 दिनों के होने लगें तब उनको नालियों से बाहर बेल फैलने वाली जगह की ओर मोड़ देना चाहिए तथा इनके आस–पास स्थानीय घास–फूस की पलवार करें।

संस्थान में फसल उत्पादन की नाली विधि से खेती कर लगभग एक तिहाई खाद–उर्वरक, सिंचाई जल एवं मानव श्रम जैसे बहुमूल्य संसाधनों की बचत के साथ अधिक उपज प्राप्त की है। डिग्गी आधारित सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था से नाली विधि में ही बूँद–बूँद पद्धति अपनाकर सीमित जल से फसल उत्पादन एवं प्रबंधन तकनीक विकसित की है तथा यह काचरी की व्यावसायिक खेती के लिए सर्वाधिक लाभप्रद रही है।

(ब) कुड विधि

रेतीले टिब्बों या असमतल खेतों में वर्षा आधारित अथवा फव्वारा सिंचाई से फसल उत्पादन के लिए कुड विधि से बुवाई करना उपयुक्त रहता है। काचरी की एकल फसल के लिये 1.5–2.0 मीटर की दूरी के अंतराल पर देशी हल से गहरे कुड बनाते हुए उर्वरकों के साथ–साथ बीज बुवाई की जाती है अथवा कुडों में 50–50 सेमी की दूरी के अंतराल पर 3–4 बीजों की बुवाई भी की जा सकती है। जब 2–4 वास्तविक पत्तियाँ आती हैं तब प्रत्येक बुवाई स्थल पर 1–2 पौधे ही रखें तथा इसी समयावधि में निराई–गुड़ाई एवं अंतराशस्य क्रियाऐं करें, ततपश्चात् कुडों को हल्की नालियों जैसा स्वरूप दे देना चाहिए। सूखे की स्थिति में फव्वारा पद्धति से 1 या 2 जीवनदायी सिंचाई लाभप्रद रहती हैं जबकि ग्रीष्मकालीन फसल में सिंचाई एक नियमित अंतराल से की जाती है।

जल प्रबंधन तकनीक

अनुसंधान कार्य में फसल बुवाई की विधियों एवं जल प्रबंधन तरीकों को योजनाबद्ध इस तरह जोड़ा गया जिससे उत्पादन संबंधी आँकड़ों का मूल्यांकन किया जा सके तथा इसमें क्यारी, कुड, नाली विधियों एवं बहाव, फव्वारा या बूँद–बूँद पद्धति के विभिन्न स्तरों को मौसम आधारित जाँचा गया। सिंचाई एवं जल प्रबंधन अनुसंधान कार्य के आधार पर बहाव में नाली विधि (channel technology) सर्वोत्तम एवं सरल है। इस विधि में जहाँ जल की बचत होती है वहीं बरसात के दिन यह नालियाँ जल संग्रहण का कार्य भी करती हैं। नाली विधि में काचरी की प्रारम्भिक अवस्था से फल जमाव होने तक 6–7 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करें।

सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था में बूँद–बूँद पद्धति (drip technology) से फसल उत्पादन के उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। इस तकनीकी में न केवल जल की बचत होती है साथ ही फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि होने से विपणन योग्य फलों की संख्या में भी बढ़ोतरी होती है। शुष्क क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर किये गए अनुसंधान कार्यों से बूँद–बूँद तकनीकी में काचरी फसल के लिए 14–16 मिलीमीटर व्यास की एकल पाइप लाइनें (laterals, 14-16 mm) जिन पर 50–50 सेमी की दूरी के अन्तराल पर चार लीटर प्रति घंटा पानी छोड़ने वाले इन–लाइन ड्रीपर्स (in-line drippers, 4lph) सर्वाधिक उपयुक्त रहे हैं। चयनित खेत में रेखांकन कर 2–2 मीटर की दूरी के अंतराल पर एकल पाइपों (laterals) को विधिवत् बिछाया जाता है तथा इनको मध्य में बिछी 50–75 मिलीमीटर व्यास की पानी आपूर्ति की पाइप लाइन से जोड़ा जाता है। मुख्य पाइप लाइन से जोड़ी जाने वाली अस्थायी लेट्रल पाइपों की एक तरफा लम्बाई 25 मीटर तक सीमित रखनी चाहिए तथा इनको पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बिछायें।

पाटा लगाने के पश्चात् तैयार खेत में जिन जगहों पर लेट्रल पाइपों के मुहाने आ रहे हैं उन्हीं के आस–पास गहरे कुड या 60 सेमी चौड़ाई व कतारों में खाद–उर्वरकों का मिश्रण मिलाकर इनको नाली स्वरूप तैयार किया जाता है, ततपश्चात् इनके मध्य में लेट्रल पाइपों को व्यवस्थित कर बुवाई कार्य किया जाता है। प्रारम्भिक हल्की सिंचाई कर प्रत्येक इन–लाइन ड्रिपर वाले स्थान के पास 3–4 बीजों की बुवाई करें। काचरी की जल बचत खेती में बूँद–बूँद तकनीकी से 3–4 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं उत्पादकता के लिए पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में 1.0–1.5 घंटा तथा फलन के समय 1.5–2.0 घंटा सिंचाई करना सर्वोतम रहा है। सिंचाई शाम के समय करें तथा फसल में कृषि क्रियाओं के लिए मौसम आधारित सूचनाओं का उपयोग भी करना चाहिए।

नवोन्वेषित शस्य क्रियाऐं

वर्षा या सिचांई पश्चात् रेतीली एवं बलुई मिट्टी कठोर परत के रूप में जम जाती है जिससे बीज अंकुरण एवं नवोदित पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इसलिए प्रारम्भिक अवस्था (12–25 दिन) में पौधों के आस–पास 1–2 निराई–गुड़ाई काचरी में सर्वाधिक लाभप्रद है। इसी तरह बेल फैलने वाले फसल क्षेत्र में बुवाई के 25–40 दिनों पर 1–2 निराई–गुड़ाई कर खरपतवारों से मुक्त रखें। नियमित अंतराल पर निराई–गुड़ाई से भूमि की ऊपरी सतह का सम्पर्क निचली सतह से टूट जाने से खेत में संरक्षित जल का वाष्पीकरण रूक जाता है तथा पौधों के आस–पास गुड़ाई कार्य से इनकी जड़ों में हवा का संचालन सुचारू रहता है जिससे फसल को अनुकूल लाभ मिलता है। खेत में बेल फैलने वाली भूमि पर स्थानीय घास–फूस से पलवार (mulching) करने से नमी तो सुरक्षित रहती है, साथ ही जमीन का तापमान भी कम हो जाता है जिससे पौधों में अधिक फल जमाव एवं विकास अच्छा रहता है। पलवार से रेत के गर्म कणों को छोटे मुलायम फलों तक जाने से रोका जा सकता है जिससे फल विकास एवं उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। खेत की तैयारियाँ, नमी संरक्षण, बुवाई, जल प्रबन्धन एवं अंतर–शस्य क्रियाओं को एकीकृत अपनाकर काचरी में 35–50 प्रतिशत अधिक फल उपज प्राप्त की है जिसका मुख्य कारण पौधों में वानस्पतिक वृद्धि, फल जमाव तथा विपणन योग्य फलों की संख्या में बढ़ोतरी का होना है।

फसल सुरक्षा प्रबंधन

कीड़ों एवं बीमारियों के अलावा वातावरण में अचानक परिवर्तन से होने वाली परिस्थितियाँ भी हैं जो फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं इसलिए प्रक्षेत्र में ऐसी प्रबन्धन व्यवस्थायें हों जिससे समय पर सुरक्षित बचाव एवं नियंत्रण किया जा सके। बुवाई पश्चात् काचरी में जंगली छिपकली, गिलहरी व पक्षियों से नुकसान होता है अतः प्रारंभिक अवस्था में गहन निगरानी करें। नवांकुरों में लाल व ऐपीलेकना भृंग एवं रस चूसने (पर्ण जीव, चेपा, तेला व सफेद मक्खी) वाले कीड़ों के प्रकोप की आशंका रहती है जिनके लिए एक किलोग्राम कीटनाशी पाउडर को 10 किलोग्राम राख के मिश्रण को टाट की थैली में भरकर प्रातःकाल पौधों पर भुरकाव करना चाहिए। काचरी में समेकित कीट नियंत्रण के लिए बुवाई पश्चात् के 18–25, 30–35 एवं 45–50 दिनों के क्रम में इमिडाक्लोरोपिड (0.3 मि.ली.), मिथाइल डिमेटोन (1.5 मि.ली.) एवं डाईमिथोऐट (1.5 मि.ली.) दवा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल का छिड़काव करना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है।

बीज उत्पादन तकनीक

बीज उत्पादन के लिए काचरी फसल की वह सभी तकनीकियाँ एवं प्रबंधन व्यवस्थायें अपनानी होती हैं जिससे स्वस्थ एवं भरपूर पैदावार प्राप्त की जा सके। इसी के साथ किस्म की आनुवंशिकीय शुद्धता को बनाये रखने के लिए विशेष बातों का ध्यान रखना होता है क्योंकि काचरी में पर–परागण क्रिया से निषेचन एवं फल जमाव होता है। इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर एक समय में काचरी की एक ही किस्म का बीज उत्पादन एक स्थान पर किया जा सकता है तथा फसल क्षेत्र से 500–800 मीटर की दूरी में इसकी दूसरी किस्म या प्रजाति के पौधे / फसल नहीं उगाई जा सकती है। इसी तरह कुकुमिस प्रजाति जैसे – मट–काचरी, फूट–ककड़ी (काकड़िया), तर–ककड़ी, सलाद–ककड़ी, आर्या–ककड़ी, वंगा, खरबूजा, आदि फसलों की किस्मों एवं इनके स्वतः उगे पौधे भी काचरी बीज उत्पादन क्षेत्र से 500–800 मीटर की दूरी तक नहीं होने चाहिए क्योंकि इन सभी कुकुमिस प्रजातियों में आपसी पर–परागण क्रिया से फल जमाव होते हैं जिससे इनकी आनुवंशिकीय शुद्धता प्रभावित हो जाती है। काचरी, मट–काचरी, फूट ककड़ी एवं ककड़ी यहाँ की स्थानीय प्रजातियाँ हैं, अतः इनके पौधे इस क्षेत्र के सभी खेतों में फसलों के साथ स्वतः ही उगते हैं तथा इन प्रजातियों के पौधों की प्रति हैक्टेयर संख्या भी अधिक पायी गई है जो कि कुछ प्रमुख फसलों के लिए यह खरपतवार भी बन जाते हैं, जब कि परम्परागत खेती में इनके स्वस्थ एवं उपयोगी पौधों को रखकर फलोत्पादन किया जाता है। अतः इन परिस्थितियों में काचरी की किस्मों के बीज उत्पादन के लिए फसल प्रबंधन में विशेष ज्ञान एवं इनकी रोकथाम की आवश्यकता होती है।

बीज के लिए एक किस्म (एएचके–119) की बुवाई एक फसल क्षेत्र में की जाती है तथा नाली अथवा बूँद–बूँद तकनीकी से उत्पादन सर्वाधिक सुरक्षित पाया गया है। बुवाई निश्चित स्थानों पर तथा एक स्थल पर 2–3 बीजों की बुवाई की जाती है। अंकुरण पश्चात के 18–21 दिनों पर प्रत्येक बुवाई स्थल पर एक स्वस्थ पौध रखकर शेष निकाल दिये जाते हैं। इसी समयावधि में पूरे खेत को विधिवत जाँचा जाता है जिससे इस प्रजाति एवं अन्य कुकुमिस प्रजाति के स्वतः उगे पौधे क्षेत्र में नहीं रह पायें एवं यह किया 2–3 बार की जानी चाहिए। किस्म की आनुवंशिकीय शुद्धता बनाये रखने के लिए फसल क्षेत्र के पास से 500–800 मीटर भू–भाग की भी 2–3 बार निगरानी करनी होती है एवं वर्णित प्रजातियों के पौधे होने पर उन्हें समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

अंकुरण पश्चात् से पहली तुड़ाई तक फसल की 3–4 बार गहन जाँच करनी होती है जिससे अवांछनीय पौधों को समय–समय पर निकाला जा सके। यह कार्य क्रमशः बुवाई पश्चात् के 18–21 दिनों पर जब नवांकुरों की छंटनी की जाती है, 25–35 दिनों पर जब पौधों में नर एवं मादा फूल खिलना प्रारम्भ होते हैं, 45–50 दिनों पर जब फल जमाव प्रारंभ होता है तथा 65–70 दिनों पर जब फल परिपक्व एवं पहली तुड़ाई प्रारंभ की जाती है, तब करना सर्वोत्तम पाया गया है। पहली तुड़ाई के समय पूरे खेत का निरीक्षण कर इसके मध्य क्षेत्र से बीज संग्रहण के लिए फलों को इकट्ठा करना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है तथा मध्य क्षेत्र की फसल से लगातार 3–4 तुड़ाई के फलों को ही बीज उत्पादन के उपयोग में लेना चाहिए। तुड़ाई पश्चात् फलों को सुरक्षित जगह पर संग्रहित कर पुनः एक समान फलों की छंटनी कर उन्हें बीज संग्रहित करने के लिए दो टुकड़ों में काट देना चाहिए। बीजों को छलनी में लेकर पानी से धो कर छायादार स्थान पर सुखाया जाता है। सूखे बीजों को साफ कर प्लास्टिक के डिब्बों में भरकर 4–5 वर्षों तक बुवाई के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रकाशक	:	**डॉ. पी. एल. सरोज,** निदेशक भाकृअनुप केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान बीछवाल, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)
ई–मेल	:	ciah@nic.in
वेबसाइट	:	ciah.ernet.in
संदर्भ	:	**काचरी फसल एवं बीज उत्पादन तकनीक** (2017) तकनीकी पत्रक, 1–6 पेज
लेखक	:	**डॉ. दिलीप कुमार समादिया,** प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी विज्ञान)
तकनीकी सहयोग	:	पी. पी. पारीक, एम. के. जैन, संजय पाटिल एवं बी. आर. खत्री
मुद्रक	:	कल्याणी प्रिण्टर्स, बीकानेर

काचरी फसल एवं बीज उत्पादन तकनीकी

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीकानेर (राजस्थान)

मरुस्थलीय जलवायु की परम्परागत सब्जी फसलों जैसे – काचरी, काकड़िया, मतीरा, टिंडा, ग्वारफली, सांगरी, फोग, खींप, ग्वारपाठा, इत्यादि का मानव–जीवन, पशु–धन एवं आजीविका में विशेष महत्व है। इन बागवानी उपयोगी फसलों को व्यावसायिक स्तर तक ले जाने के लिए संस्थान में वर्ष 1994 से जननद्रव्य संग्रहण एवं संरक्षण के साथ–साथ किस्मों तथा उत्पादन तकनीकियाँ विकसित करने के सघन अनुसंधान कार्य किये है। परिणामस्वरूप इस समय काचरी एक प्रमुख सब्जी का स्थान ले चुकी है तथा संस्थान द्वारा इसको बढ़ाने के लिए व्यापक प्रचार–प्रसार एवं बीज उत्पादन कार्य किये जा रहे हैं।

काचरी की उन्नत किस्मों को अपनाने से किसानों के आर्थिक लाभ में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है तथा अध्ययनों से यह पाया कि एक हैक्टेयर खेती से रूपया 75,000–1,50,000 आय प्राप्त कर रहे हैं। वर्ष में दो फसल उत्पादन, कम लागत एवं अधिक आय तथा बहु–उपयोगिता के कारण यह अतिलाभकारी है, इसलिए काचरी की व्यावसायिक फसल के लिए इसकी विकसित किस्मों को क्रमबद्ध वैज्ञानिक खेती में अपनाना आवश्यक है।

काचरी - एक परिचय

मरुस्थलीय अँचल के खान–पान, तीज–त्यौहार व लोकगीत, धार्मिक पूजन सामग्री आदि में काचरी का विशेष महत्व है तथा यहाँ प्रवासी रिश्तेदारों को उपहार स्वरूप इसके सूखे फलों की सौगात (दिबड़ी) देने का रिवाज है। सदियों से परम्परागत खेती में इसको घटक फसल के रूप में अपनाना, ताजा फलों का सब्जी, चटनी व सलाद तथा सुखाकर फलों को वर्षभर के लिए उपयोग, बाजार में ताजा व सूखे फलों का व्यवस्थित व्यवसाय, मसाला पाउडर में प्रयोग, औषधीय गुणधर्म, इत्यादि इसकी बहु–उपयोगिता को सिद्ध करते हैं।

काचरी के परिपक्व फल एक विशेष खट्ठा–मीठा स्वाद के लिए लोकप्रिय हैं तथा यह स्वादिष्ट, गुणकारी एवं पौष्टिक तत्वों से भरपूर होते हैं। फलों को विविध प्रकार की मिश्रित या एकल सब्जी तथा विशेष स्वाद की चटनी एवं अचार बनाने के उपयोग में लिया जाता है। वर्षभर उपयोग के लिए सुखाकर भंडारित किया जाता है तथा एक विधि में इसके छोटे फलों को बिना छिले सुखाया जाता है जिन्हें स्थानीय भाषा में कोकलिया कहते हैं। सूखे फलों का उपयोग सब्जी, चटनी व अचार अथवा चूर्ण (पाउडर) बनाकर कई तरह के मसालों (ready to use spice powder) में किया जाता है।

काचरी (kachri) कुष्माण्ड कुल (cucurbitaceae) का एक वर्षीय, मौसमी व बेलदार पौधा है एवं कुकुमिस मेलो की अवर्णित प्रजाति केलोसस/एग्रेटिस (non-dessert form of *Cucumis melo* var. *callosus / agrestis*) अथवा पर्यायरूपी कुकुमिस केलोसस या कल्चर (*Cucumis callosus* or *culture*) के नाम से संकलित है। देश के विभिन्न भागों की स्थानीय भाषा में इसको काचरिया, काचर, मट–काचर, काचरा, सैंद, छोटी सैंद, बड़ी सैंद, सैंदा, सेंघा, पथेया, गोरड़ी, इत्यादि नाम से पहचानी जाती है। संस्कृत में चित्र, चित्रफला एवं मृगावक्षी तथा अंग्रेजी में मैंगो मेलन के नाम से वर्णित किया है।

काचरी गर्म जलवायु वाली फसल है तथा पौधे अत्यधिक सूखा एवं तापमान वाली वातावरणीय स्थितियों को सहन करने वाले होते हैं। कम वर्षा (250–300 मिलिमीटर) अथवा सीमित सिंचाई जैसी परिस्थितियों में भी इसके पौधों में वानस्पतिक विकास एवं फल उत्पादन अच्छा रहता है। बुवाई के समय बीजों में अधिकतम अंकुरण के लिए 20°–22° सेल्सियस तापमान आवश्यक है तथा 32°–38° सेल्सियस तापमान पौधों में वानस्पतिक वृद्धि एवं फल जमाव के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, परंतु गर्म मरूस्थलीय क्षेत्र में जहाँ अधिकतम तापमान 45°–48° सेल्सियस तक रहता है वहाँ भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है।

उन्नत किस्मों का विकास

गर्म शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की खरीफ फसलों में काचरी के पौधे स्वतः अथवा बीजों के छिंटकाँव से उगते हैं तथा सदियों से काश्तकार इसके स्व–उत्पादित बीजों को संरक्षित कर उपयोग में लेते रहे हैं। इसमें पर–परागण एवं स्व–विवेक से चयन के परिणामस्वरूप इसके पौधों के वानस्पतिक तथा फलों के लक्षणों में अत्यधिक जैव–विविधता पायी गई है। संस्थान में वर्ष 1994 से काचरी प्रजाति (non-dessert forms of *Cucumis melo*) में मूल्यांकन के अनुसंधान इस तरह किये जिससे अतिविशिष्ट जननद्रव्यों का संरक्षण किया जा सके। सघन सर्वेक्षण द्वारा लगभग 825 जननद्रव्यों का संग्रहण कर बीकानेर की कृषि–जलवायु में मूल्यांकन तथा 600 को राष्ट्रीय जीन बैंक, एनबीपीजीआर; नई दिल्ली में संरक्षित किया गया है।

काचरी जननद्रव्यों को लक्षणात्मक एवं उपयोगिता के आधार पर चयन प्रक्रिया से 68 लाइनों को फसल सुधार के लिए भंडारित रखा गया हैं। शुद्धिकरण पश्चात् अतिविशिष्ट गुणों के आधार पर प्रजनक लाइनों – एएचके–119, एएचके–200, एएचके–202, एएचके–109, एएचके–155, एएचके–5, एएचके–411, एएचके–564 एवं एएचके–572 का चयन किस्में विकसित करने के लिए किया गया तथा इनको विभिन्न उत्पादन व्यवस्थाओं में वृहद स्तर पर जाँचा गया एवं सर्वाधिक उपयुक्त किस्मों यथा एएचके–119 एवं एएचके–200 को व्यावसायिक खेती के लिए संस्तुति की गई है।

एएचके-119

संस्थान द्वारा वर्ष 1998 में विकसित यह किस्म सब्जी, चटनी, अचार एवं सुखाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। फल आकार में छोटे, अण्डाकार (वजन 50–60 ग्राम) एवं हल्के हरे रंग वाला जो कि गहरी व खंडित धारियों युक्त होते हैं। फल स्वाद में खट्टे–मीठे, रसीले एवं अधिक बीज युक्त होते हैं तथा छिलका कठोर होने से यह अधिक दिनों तक भंडारित किये जा सकते हैं। बुवाई पश्चात् पौधों में पहली फल तुड़ाई 68–70

दिनों में प्रारंभ हो जाती है एवं यह 110–120 दिनों तक रहती है। व्यवस्थित खेती में एक पौधे पर 20–23 फल सहजता से लगते हैं जिससे 95–100 क्विंटल/हैक्टेयर उत्पादन होता है।

एएचके-200

संस्थान द्वारा वर्ष 1998 में विकसित यह किस्म सब्जी एवं फल–सलाद के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। फल मध्यम–बड़े, दीर्घायताकार (वजन 100–120 ग्राम) तथा छिलका मध्यम कठोर एवं हल्का पीला–केसरिया रंग वाला होता है। विशेष खट्टे–मीठे स्वाद वाला गूदा मीठा, रसीला व स्वादिष्ट होता है। बुवाई पश्चात् पौधों में पहली फल तुड़ाई 65–70 दिनों में प्रारंभ हो जाती है एवं यह 100–110 दिनों तक रहती है। व्यवस्थित खेती में एक पौधे पर 18–20 फल सहजता से लगते हैं जिससे 115–120 क्विंटल/हैक्टेयर उत्पादन होता है।

प्रक्षेत्र विकास तकनीक

विगत 22 वर्षों (1994–2016) से क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर किए गये अध्ययनों से बागवानी फसलों की व्यावसायिक संभावनाओं एवं रूकावटों तथा संसाधनों का समुचित उपयोग जैसे महत्वपूर्ण घटकों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गये हैं। अनुसंधान एवं विश्लेषण कार्यों से एक सुनियोजित योजना का सृजन किया गया है जिसको बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन (Horticulture based crop production site management approach, HBCPSMA) नाम दिया है। कम वर्षा, लम्बी समयावधि एवं अधिक तापमान वाला ग्रीष्मकाल तथा सर्दियों में अत्यधिक न्यूनतम तापमान एवं पाले जैसी वातावरणीय रूकावटों में भी सुनियोजित फसलों का चुनाव तथा उनकी समयावधि को क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप उत्पादन प्रणालियों में समावेश कर व्यावसायिकता की प्रबल संभावनाएँ आँकी गई हैं। फसलों को वातावरणीय प्रकोप के प्रभाव से बचाने एवं निश्चित उत्पादन के लिए प्रक्षेत्र में उचित कृषि–वातावरण तैयार करना एक सैद्धांतिक आवश्यकता मानी है। इस क्षेत्र में बागवानी के लिए फसल सुरक्षा एवं प्रबंधन की विशेष आवश्यकता है जो प्रभावशाली, स्थिर एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण हो, जिससे किसान उन्हें सहजता से अपना सके। इसी के साथ फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए उन्नत व नवोन्वेषित तकनीकों को प्रक्षेत्र प्रबन्धन व्यवस्थाओं में अपनाना होता है।

इस योजना में खेजड़ी आधारित व्यवस्थायें विकसित की जाती हैं तथा किसान, जिनके पास 4–16 या 25 बीघा जमीन का एकल जोत है वे संसाधनों के अनुरूप परम्परागत अथवा गैर–परम्परागत फसलों का समावेश उत्पादन प्रणालियों में कर सकते हैं तथा उनको प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक कड़ी मेहनत करनी होती है जिसका प्रतिफल सुनिश्चित एवं निरन्तर लाभ है। सर्वप्रथम चयनित भू–भाग की बाड़ या तार बंदी करनी होती है जो कि इसका पहला सैद्धांतिक आधार है एवं इससे ही कृषि–वातावरण तैयार करने वाले बीजू पेड़–पौधों को योजनाबद्ध प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में एकल अथवा जोड़े (4x4 मीटर) में खेजड़ी व केर या रोहिड़ा (पूर्व), खेजड़ी व केर या लसोड़ा या रोहिड़ा (पश्चिम), खेजड़ी व कुमट या रोहिड़ा या बोरड़ी (उत्तर) तथा खेजड़ी व लसोड़ा या रोहिड़ा या कुमट (दक्षिण) विकसित करते हैं। प्रक्षेत्र में उत्पादन व्यवस्थाऐं विकसित करने के लिए उचित आकार के इकाई खेतों का चुनाव तथा संसाधनों के अनुरूप फसलों का चयन किया जाता है। खेजड़ी की किस्म थार शोभा को उत्पादन प्रारूपों (cropping models) में लगाया जाता है तथा ये आधार वृक्ष अनुकूल कृषि–वातावरण तैयार करेंगे। प्रक्षेत्र विकास पर सतत् अध्ययनों से यहाँ की जलवायु के अनुरूप काचरी उत्पादन के तीन संयोजनों वाली व्यवस्थायें व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त हैं एवं इनको इस प्रकार परिभाषित किया गया है:–

(अ) जैविक पंचकूटा उत्पादन तकनीक (Organic *Panchkuta* production technology):– इसमें पंचकूटा सब्जी की पांच स्थानीय फसलों का जैविक पद्धति एवं वर्षा आधारित उत्पादन के लिए खेजड़ी की किस्म थार शोभा के एकल बगीचे (एक हैक्टेयर का इकाई खेत KM-1, 4x4 या KM-3, 8x8 मीटर) विकसित करने होते है तथा किनारों की चारों दिशाओं में 4x4 मीटर जोड़े में केर (पूर्व व पश्चिम), कुमट (उत्तर) एवं लसोड़ा (दक्षिण) की पट्टिकायें उत्पादन प्रारूप में तैयार की जाती हैं एवं बगीचे के मध्य में काचरी की खेती की जाती है।

(ब) अल्पप्रचलित फसल उत्पादन तकनीक (Bari / native crop production technology) :– वर्षा आधारित सब्जी उत्पादन की इस व्यवस्था में खेजड़ी के एकल बगीचे (एक हैक्टेयर इकाई खेत KM-3, 8x8 मीटर) में विकसित करने होते हैं तथा प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में एकल अथवा जोड़े (4x4 मीटर) में बीजू पेड़–पौधों की पट्टिकायें तैयार की जाती हैं एवं बगीचों में काचरी की खेती की जाती है।

(स) व्यावसायिक फसल उत्पादन तकनीक (Intensive crop production technology):– इस व्यवस्था में खेजड़ी को 4x4 मीटर के जोड़ों में अधिकतम दूरी की पट्टिकाओं (KM-9 or KM-11, 24 या 44 मीटर के अंतराल) में विकसित करना होता हैं। प्रक्षेत्र के (1–4 हैक्टेयर इकाई खेत) किनारों की चारों दिशाओं में एकल अथवा जोड़े (4x4 मीटर) में बीजू पेड़–पौधों की पट्टिकायें तैयार की जाती हैं। बगीचों की पट्टिकाओं की भूमि को खेत में विकसित कर नाली, बूँद–बूँद या फव्वारा पद्धति से सिंचाई एवं फसल उत्पादन किया जाता है।

खेत की तैयारियाँ

प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी में फसल बुवाई पूर्व व कटाई पश्चात् खेत की समय पर तैयारियाँ एवं कृषि क्रियाऐं जिनमें गहरी जुताई, वर्षा जल संग्रहण तथा नमी संरक्षण को अपनाना

प्रमुख है। देश व प्रदेश में मानसून आगमन की सूचना के साथ ही जून महीने में खेजड़ी बगीचों या इनकी पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को तैयार कर गहरी जुताई कर लेवें तथा गोबर या भेड़–बकरी की खाद मिलाकर अंतिम सप्ताह में एक बार पुनः जुताई करें, ततपश्चात् पाटा लगाकर खेत को बुवाई के लिए तैयार रखें। दीमक व भूमिगत कीड़ों से बचाने के लिए कीटनाशी पाउडर का भुरकाव पाटा लगाने से पहले करना चाहिए। संस्थान में किये गये अध्ययनों से यह पाया गया कि पहली जुताई जून महीने के दूसरे पखवाड़े में तथा फसल उत्पादन के लिए वर्णित तकनीकी से तैयार खेत में वर्षा जल अधिक संग्रहित व संरक्षित रहता है एवं खरपतवार भी कम उगते हैं। इसी तरह फसल कटाई पश्चात् नवम्बर–दिसम्बर में जुताई से इनके अवशेष व खरपतवार भूमि में मिल जाते हैं तथा सर्दियों में होने वाली वर्षा (मावठ) का जल भी अधिक संचित होता है। ग्रीष्मकालीन बुवाई के लिए खेतों को जनवरी–फरवरी में दो बार हैरो से जुताई पश्चात् पाटा लगाकर तैयार करना चाहिए।

खाद–उर्वरक प्रबंधन तकनीक

काचरी फसल प्रबंधन अनुसंधान कार्यों से नाली अथवा बूँद–बूँद प्रणाली अपनाकर खेती के लिए खाद व उर्वरकों के उपयोग की एक समेकित व्यवस्था विकसित की है। इसके अंतर्गत तैयार खेत में रेखांकन कर देशी खाद (50 क्विंटल), वर्मीकम्पोस्ट (5 क्विंटल), डाईअमोनियम फास्फेट (100 किलोग्राम), सिंगल सुपर फास्फेट (100 किलोग्राम), यूरिया (50 किलोग्राम), म्यूरेट आफ पोटाश (50 किलोग्राम) तथा कीटनाशी पाउडर (10 किलोग्राम) प्रति हैक्टेयर की दर के मिश्रण को व्यवस्थित रूप से 60 सेंटीमीटर चौड़ाई व कतारों में बिखराव किया जाता है ततपश्चात् इस भाग पर नालियाँ तैयार कर बुवाई कार्य किया जाता है।

नाइट्रोजन की आधी मात्रा (यूरिया 50–60 किलोग्राम/हैक्टेयर) को तीन भागों में बाँट कर बुवाई के 18–25 दिनों बाद एवं दूसरी 30–35 दिनों पर जब पौधों में फैलाव एवं फूलों का आना प्रारम्भ हो तथा अंतिम भुरकाव 45–50 दिनों पर जब फल जमाव प्रारम्भ होते है उस समय देना सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। यूरिया का भुरकाव करते समय ध्यान रखें कि खेत में पर्याप्त नमी हो अथवा सिंचाई के तुरन्त पश्चात् ही इसका उपयोग करें। बूँद–बूँद प्रणाली में यूरिया का उपयोग 4–6 भागों में विभक्त कर 10–12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई के साथ करना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है। बारानी फसल में यूरिया का 2 प्रतिशत घोल (20 ग्राम/लीटर) का 300–400 लीटर/हैक्टेयर छिड़काव करना लाभदायक है।

फसल बुवाई तकनीक

काचरी की खेती के लिए योजनाबद्ध बुवाई कार्य करना चाहिए जिससे वातावरणीय रूकावटों के कारकों का फसल पर कम से कम प्रभाव हो, साथ ही गुणवत्तायुक्त एवं अधिक उपज प्राप्त की जा सके। वर्षा आधारित खेती के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई महीने के अंत तक जब भी वर्षा का दौर हो उसी समय बुवाई कार्य करें। सिंचित फसल के लिए बुवाई जुलाई एवं फरवरी महीने में करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है।

शुष्क जलवायु को एक संसाधन के रूप में अपनाते हुए काचरी की नियमित अंतराल पर जनवरी–मार्च तथा जून–जुलाई में योजनाबद्ध बुवाई कर अप्रैल–दिसम्बर तक इसके ताजा फलों की बाजार में उपलब्धता रखी जा सकती है। प्रक्षेत्र प्रबंधन के अंतर्गत डिग्गी आधारित खेती के साथ–साथ वातावरणीय प्रकोप से बचाव के लिए संरक्षित फसल उत्पादन की स्वदेशी व्यवस्थायें विकसित की है। इस संरक्षित तकनीकी (channel covering / tent technology) में दिसम्बर के अंत से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक बीजों की वर्णित विधियों से खेत में बुवाई कर नालियों/लोहे के ढाँचों को पॉलीथीन की चादर से ढका जाता है तथा प्रारंभ के 30–35 दिनों तक फसल को ठण्ड व पाले के प्रकोप से सुरक्षित रखा जाता है एवं फरवरी के प्रथम सप्ताह में पॉलीथीन को हटाकर सामान्य कियाओं से अगेती फलन प्राप्त की जाती है।

काचरी की उन्नत किस्मों का चुनाव करें तथा एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए 1.0–1.5 किलोग्राम बीज पर्याप्त हैं। शीघ्र अंकुरण एवं अच्छी प्रारम्भिक वृद्धि के लिए बीजों को बुवाई से पहले 1–2 घंटे तक पानी में डुबाकर रखें अथवा गर्म पानी में नमक (20 ग्राम/लीटर) के साथ डुबाते हैं। इस किया पश्चात् तले में बैठे बीजों को टाट की गीली पोटली में बाँध लेवें तथा इसे रात भर गोबर की खाद के गड्ढे या गड्ढा बना कर जमीन में रखें। इस तरह तैयार बीजों को बुवाई के तुरंत पहले कैप्टान, थाइरम या बैवेस्टिन (2–3 ग्राम दवा/किलोग्राम की दर) से उपचारित करें। संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियों में किस्म एएचके–119 के बीजों को वर्णित विधि से उपचारित एवं नाली अथवा बूँद–बूँद प्रणाली में बुवाई के लिए 500 ग्राम/हैक्टेयर पर्याप्त रहा है।

काचरी की वर्षा आधारित खेती के लिए बुवाई मिश्रित अथवा एकल पद्धति में छिटकाँव या कुड विधि से तथा सिंचित फसल के लिए क्यारी, कुड अथवा नाली विधि में बुवाई कर बहाव, फव्वारा या बूँद–बूँद पद्धति से सिंचाई की जा सकती है। सीमित वर्षा एवं डिग्गी आधारित जल बचत खेती के लिए बुवाई की नवोन्वेषित विधियाँ विकसित की हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है–

(अ) नाली विधि

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में किये गये अनुसंधान कार्यों के निष्कर्षों के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से काचरी की खेती के लिए नाली विधि सर्वोतम है। इस विधि में पाटा लगा कर तैयार किए खेत में 1.5–2.0 मीटर दूरी के अंतराल पर 50–60 सेमी चौड़ाई की हल्की–गहरी नालियाँ बनायी जाती हैं। खेत में पानी आपूर्ति की मुख्य नाली के दोनों ओर 25 मीटर लम्बाई की नालियाँ फसल बुवाई के लिए तैयार की जाती हैं तथा इन्हें पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही बनाना चाहिए। रेखांकन कर बनाई गई इन नालियों में खाद–उर्वरकों के मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर बुवाई के लिए तैयार किया